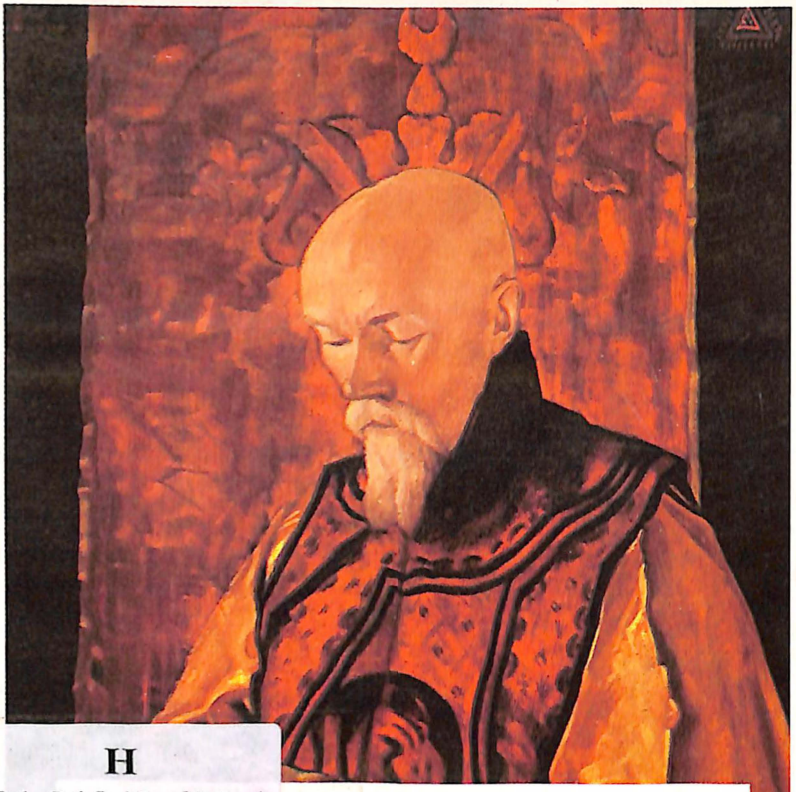

H
291.212 R 628 A

अग्निविद्या

निकोलाई रेरिख

H
291.212
R628A

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SIMLA

अग्नि-विद्या

प्रो० निकोलाई रेरिख

अनुवादक

डॉ० हरिवंश तरुण

रेरिख अध्ययन परिषद

नयी दिल्ली-110 067

प्रकाशक
रेरिख अध्ययन परिषद,
नयी दिल्ली-110 067

वितरक
प्रकाशन संस्थान,
4715/21 दयानंद मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002

Library IIAS, Shimla
H 291.212 R 628 A
G2047

प्रथम संस्करण : 1996
मूल्य : 10 रुपये
आवरण : जगमोहन सिंह रावत

अक्षर संयोजन : शब्दांकन लेज़र प्रिंटर्स, दिल्ली-110032
मुद्रक : विकास ऑफसेट, दिल्ली-32

अंतर-संवाद !

सातवीं सदी में सीरियाई मरुस्थल के महान संन्यासी इज़हाक सिरीन ने अपनी पुस्तक 'वस्तुओं की दीप्ति' में लिखा था—

'अनुभूतियों की क्षीणता वस्तुओं की दीप्ति का सामना करने अथवा उसे सहन करने में सर्वथा असमर्थ होती है।' 'शत्रुओं से अधिक अपनी आदतों से भय खा।' 'श्रमविहीन उत्पादन तो मात्र संसारी लोगों का है।' 'अपने हाथ से तू वायु-वेग को रोकने का प्रयास मत कर, वह मात्र कर्मविहीन आस्था है' 'किसी को भी क्षुब्ध मत कर और घृणा तो किसी से कर ही नहीं।' 'युगों से सांसारिक सुख की आशा में लोग 'महत्तम' को विस्मृत करते रहे हैं।' समस्त प्रकार की वासनाओं में आत्मरति अग्रणी है। इसी प्रकार सारे सांसारिक सुखों का परित्याग सर्वश्रेष्ठ गुण है।' 'मौन भावी युग का संस्कार है।' 'इस युग के विनाश के तत्काल बाद नए काल का सूत्रपात होना है।' 'ज्ञान क्या है ?—शाश्वत जीवन का बोध ही तो है।' 'सांसारिक सुख-भोग-लिप्त जीवन के माध्यम से कभी कोई उत्थान के पथ पर अग्रसर नहीं हुआ है।'

वस्तुओं की दीप्ति पर उस संन्यासी का ऐसा ही चिंतन-मनन था। और, हिमालय के ऋषियों ने भी उसी महाग्नि की

CATALOGUED

उद्घोषणा की। 'अग्निपुराण' में भी उसी एकमात्र परम आलोक की चर्चा आई है।

हिमालय के ऋषियों तथा सनाय के संन्यासी ने अपनी साधना की उच्चता में उसी अंतर-अग्नि का साक्षात्कार किया।

अग्नि-युग के आविर्भाव-काल में विशिष्ट दृढ़ता के साथ अनेक अग्नि-संकेत उभर रहे हैं,—वैदिक काल से लेकर अद्यतन कॉस्मिक किरणों के आविष्कार तक। रूस की प्राचीन प्रतिमाओं में से एक सर्वाधिक रहस्यमय का नाम है—'देवदूत—धन्य मौन'। इस महान प्रतीक की अभिव्यक्ति एक आग्नेय देवदूत के रूप में हुई है। इस प्रतिमा-अग्नि में एकाग्रता तथा सर्जनात्मक चिंतन-शक्ति का अद्भुत प्रकाशन हुआ है। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि एक हिन्दू इस प्रतिभा को अपनाने के लिए अत्यधिक व्यग्र है। यदि हम उस प्राचीन प्रतीक को आधुनिक परंपरागत दृष्टिकोण के बजाय उनकी समस्त प्राथमिक विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में समझें तो श्रेयष्कर होगा।

'देवदूत-धन्य मौन'। आग्नेय देवदूत की प्रतिमा की ज्वलित रहस्यमयता से कौन नहीं आह्लादित हुआ है ? इस चिर-प्रतीक्षित, किंतु अप्रत्याशित अतिथि के सर्ववेधी संदेश से कौन नहीं अनुप्राणित हुआ है ? अंतर का मौन—उसकी उपस्थिति का सूचक है। वह आत्मा के अक्षर सौंदर्य का रक्षक है। वह रखवाला और वरदायी है।

प्राचीन ईसाई पुस्तक 'मीरर' में कहा गया है : 'देवदूत स्पर्शातीत है। वह आग्नेय तथा अग्निशिखा-धारक है।'....'उसे

अभिव्यक्ति के लिए न शब्दों की आवश्यकता है, और न श्रवण के लिए कान की। शब्द अथवा श्रवण के बिना ही देवदूत अपने विवेक का सम्प्रेषण करते हैं।'....'देवदूत अपने स्वप्निल शरीर पर मानव-हित के लिए आवरण धारण करता है।

मौन में वह दृश्य स्पष्ट हो उठा : समस्त वस्तुएँ पारभासी हो गईं। और, 'महान अतिथि' की प्रतिमा देदीप्यमान प्रतीत होने लगी। उसके अधर मौन धारण किए रहे और उसने हाथों की ओर रक्खा। उसके प्रत्येक बाल से ज्योति प्रवाहित हो रही थी। उसकी आँखें अगाध एवं भेदक रूप से उद्दीप्त हो रही थीं।

उस प्रदीप्त रूप ने उत्साहपूर्वक नवीन एवं अभिमंत्रित वचन को उतारा। रहस्यमय ढंग से उसने परमानन्द के संकेत को सुनिश्चित किया। 'अनाख्येय' का उसने निर्भयतापूर्वक स्मरण दिलाया। वह अथक रूप से मानव-हृदय को जागरित करता है। वह आत्मा की विजय का नियामक है। इस सत्य को सभी अपने हृदय की भाषा में पहचानेंगे और स्वीकारेंगे।

तब फिर उस 'देवदूत-अभिमंत्रित मौन' के प्रतीक को किसने अपने में समाहित किया ? इस प्रतीक का उद्‌भव उत्तरी सागर से हुआ। किंतु यह रहस्य का उद्‌भव मात्र मध्यएंत्रिक (उत्तरी) सागर से ही नहीं हुआ। इसमें पूर्व के महान संदेशवाहक का गुप्त प्रतीक भी उद्‌घाटित है। इसके अंतर्गत 'क्रूस' का मर्म भी समुपस्थित है। जिसके पावन कर एवं चिंतन से 'सोफिया' का प्रतीक निर्मित हुआ, उन्हीं सर्वशक्तिमान की चेतना ने मौन के देवदूत को भी साकार किया। सतत प्रयासरत

सोफिया-प्रजा-के पंख प्रदीप्त हैं। देवदूत अभिमंत्रित मौन के पंख उसी अग्नि-शिखा के रूप हैं। इलियास के रथ के अश्व आग्नेय हैं और, आग्नेय दीक्षा ईसा-धर्मदूतों द्वारा अभिषिक्त है। वही अग्नि सर्वव्यापी है। उस सर्वदर्शी, सतत आरोही एवं सर्ववेधी अग्नि के समक्ष मानवीय शब्द निरर्थक हैं।

डायनमो की चिंगारियाँ अंतरिक्ष को अनुप्राणित करती हैं। उत्तेजना की स्थिति में वे सर्पिल आरोहण के रूप में पुष्पित होती हैं तथा शाखाओं एवं आग्नेय पत्तियों वाले वृक्ष के रूप में प्रदीप्त होती हैं। चिंतन का स्वर प्राणों को तीव्रता प्रदान करता है तथा मनुष्य महालोक की आभा के समक्ष अपने को तुच्छ एवं प्रकंपित स्थिति में खड़ा पाता है। तब 'कुंडालिनी' की अग्नि प्रदीप्त होती है तथा 'इजेकियल'—चक्र गतिमान हो उठता है। फिर भारत 'चक्र' भी घूमने लगता है। 'कपिल' के चक्षु में गंभीरता के दर्शन होते हैं। दीप्ति की सीमा कहाँ है ? 'महाशक्ति' का मापदंड कहां है ? किंतु, तब आलोक अदृश्य हो जाता है और ध्वनि तिरोहित हो जाती है...।

कोई ज्योति-शिखा नहीं झिलमिलाती। प्राण-गंध तक की अनुभूति भी नहीं होती। यह उत्तेजना की सर्वोच्च स्थिति है। दृष्टि के परे और श्रवणातीत भी। मात्र हृदय ही मौन की पुकार को सुन पाता है तथा 'चैलिस' की परिपूर्णता की अनुभूति भी उसी को हो पाती है। प्रथम चरण में विद्युत एवं गर्ज़न तथा चक्रवात एवं कंपन; और उसके उपरांत ही मौन की स्थिति में अनिर्वचनीय ध्वनि-संगीत उभरता है। 'अग्नि योग' का कथन

है,—'प्रथम, निमंत्रण वज्र-गर्जन के सदृश्य है, किंतु अंतिम मौन से परिपूर्ण ।' सर्वप्रथम एक प्रदीप्त दूत का आगमन होता है, उसके उपरांत प्रज्ञा-रूपा 'सोफिया' का....।

कहते हैं—'परमानन्द एक संकोची पक्षी है; 'सोफिया' के पंखों में तीव्रता है। दुर्भाग्य उनका, जिनको इसकी अनुभूति नहीं हुई और उनका भी जिन्होंने इसे नहीं समझा। उनका भी दुर्भाग्य है, जिन्होंने इसे अस्वीकार ही कर दिया। तब फिर भीरु अथवा क्रूर दृष्टि के समक्ष आह्लादजन्य प्रदीप्त पंख क्यों प्रकट होने लगे ?

किंतु, अनुभव-विहीन दृष्टि के समक्ष भी पूर्व में कितनी अग्नियाँ प्रकट हो चुकी हैं ? मानवता आलोक उद्‌गम के स्वप्न देखती है। वह महाशून्यता का स्वप्न होता है अंधकार में वह साहसिकता के साथ अपने आप के समक्ष पाप स्वीकार भी करती है। यहाँ तक कि रात्रि में तो मानवता आस्था के बिरवे को सींचती है, किंतु दिन में उसे उद्‌घोषित नहीं करती। यद्यपि वह इस सिद्धांत से परिचित है—'मेरी तुम में आस्था है और मैं इसे उद्‌घोषित करता हूँ।' आह, मानवता स्वयं यह जानती है कि कर्म-विहीन आस्था मात्र एक छलावा है। मात्र कपोल-कल्पना ! किंतु, धन्यता, परमानन्द में आकर्षण एवं स्वस्ति है। नहीं तो फिर ये कुहेलिकापूर्ण उसाँसे किस लिए ? अन्यथा स्वयं विज्ञान का भी क्या प्रयोजन, यदि आत्मा में उसे व्यवहार में लाने का साहस न हो ? रात्रिकालीन 'निकोडेमस' मात्र फलविहीन आस्था का प्रतीक है; कहा जाए, बिना लौ

अथवा ताप की चिंगारी है।

दारुण होता है अपकर्ष । अज्ञान की उदासीनता असह्य होती है। यह अपने अपकारी गुणों, संचय की संक्रामकता तथा मूलाधार पर ही कुठाराघात करने की प्रवृत्ति के कारण अग्रह्य है। अनेक बार परमानन्द, धन्यता का भयभीत पक्षी बंद खिड़कियों के पास अपने पंख फड़फड़ाता है, किन्तु हम उन सब से भय खाते हैं, जो हमारे अज्ञान पर प्रहार करते हैं। हम तो अपने द्वार पर लगी सिटकिनियों पर ही भरोसा रखनेवाले हैं। यहाँ तक कि आँखों-देखी को भी हम एक 'घटना' मात्र की संज्ञा दे देते हैं और कानों सुनी को भी एक 'संयोग' घोषित कर देते हैं। हमारे लिए एक्स-रे तथा रेडियम के गुण भी सामान्य हैं और विद्युत हमारी सुख-सुविधा में सहायक एक लालटेन भर। यदि किसी से यह कहा जाए कि चिंतन शरीर के भार में परिवर्तन का कारक है, तो सभ्यता के यान्त्रिकों को इससे भी कोई विस्मय होनेवाला नहीं।

रक्त-संचार में अनियमितता तथा हानिकर रक्त-चाप में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हो रही है। इंफ्लूएंजो का नवीनतम रूप फेफड़े को प्लेग की तरह जला डालता है। इसके रोगी के कंठ में भयानक जलन होती है। दमा विध्वंसक हो गया है। मस्तिष्क-तंत्रिका-शोध विस्तार पर है तथा अबोध्य हृदय-लक्षण भी तीव्र वृद्धि पर हैं। किंतु, हमारे लिए ये मात्र शौकिया रोग हैं, जिन पर हमारा कोई विशेष ध्यान भी नहीं जाता। अंतरिक्ष की रेडियो तरंगों द्वारा संपृक्ता, गैसोलिन द्वारा विषाक्तीकरण,

अति विद्युतीकरण के संकेत आदि के सम्बन्ध में हम पूर्व से ही सुन रहे हैं। इस परिस्थिति में भविष्य के विषय में सोचना दुखद लगता है अतः एक गोल्फ-गेंद के भाग्य को हमारे पृथ्वी-ग्रह की नन्हीं गेंद की नियति के समान ही महत्त्व दिया जा रहा है। बुद्धिमति रानी 'हतशेपसुत' की परंपरा से हटकर हम उन्हें सम्बोधित करते भय खाते हैं, जो आगामी वर्षों में इस धरती पर होंगे, जो अपने अंतर को विकसित करेंगे तथा 'जो भविष्य के द्रष्टा होंगे'—तब भी अगर भविष्य की भयावह धारणा ऐसे अश्मीभूत विचारों के माध्यम से उद्घोषित हुए हों कि उस तक जानेवाला मार्ग तत्क्षण एक भूमिगत कालकोठरी में रूपांतरित हो जाता है।

तथापि, ज्ञान-प्राप्ति की प्रथम शर्त है अध्ययन की विधियों से मुक्ति। मानक विधियों पर बल देना आवश्यक नहीं। सच्चा ज्ञान तो प्राप्त होता है आंतरिक संचयन से, साहस से; क्योंकि एक ज्ञान तक जाने के अनेक मार्ग हैं। जीवन के ऐसे आमंत्रण एवं मील-पत्थर के विकरण ही सर्वाधिक अपेक्षित एवं उन्नयन मूलक पुस्तक बन जाएँगे। रुढ़िवादिताओं पर बल न डाला जाए तथा उसके प्रभाव से दमित अथवा वंचित होना भी नहीं है। किंतु आलोक, अंतरिक्ष अग्नियों, मध्यऊर्जाओं तथा पूर्वनियत विजयों का निरंतर स्मरण अहम है। प्राथमिक विद्यालयों की पाठ्यपुस्तकों से परे के तथ्यों को संकलित किया जाए। इन तथ्यों को बिना किसी अहंकार, घृणा अथवा पाखंड के पूरी आस्था के साथ अनुस्यूत किया जाए क्योंकि इनके पीछे सत्य

के प्रति भय, अर्थात ज्ञान, घात लगाए बैठा है। यह कभी कोई नहीं जानता कि कारगर बीज का प्रादुर्भाव कब होगा। भौतिकविज्ञानी, जैवरसायनी, वनस्पतिशास्त्री, चिकित्साविज्ञानी, पुजारी, इतिहासज्ञ, दार्शनिक, तिब्बती लामा, ब्राह्मणपंडित, रब्बी रहस्यावादी, कन्फूसियसमार्गी, वयोवृद्धा स्त्री चिकित्सक अथवा अंततः अनाम सहयात्री—इनमें से कोई भी सर्वाधिक योगदान कर सकता है। प्रत्येक के जीवन में बहुत कुछ विलक्षण रूप से प्रेरणादायी और विरल हैं। बस, सिर्फ इसे स्मरण रखना है। इन अनुस्मारकों में असंख्य सर्वोत्तम तारे कौंध रहे हैं, जो मात्र अस्थाई रूप से ओझल हैं। इस प्रकार पुनः अपने दैनिक श्रम का त्याग किए बिना, निषिद्ध को नहीं, बल्कि जीवन को आलोकित करने वाली संभावनाओं की ओर हम अग्रसर हों। आग्रह करना मात्र हमारा काम नहीं है, बल्कि ऐसा न हो कि वह बाह्यता का रूप ले ले। कमृण, बाह्य करने से कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। लेकिन मैं फिर कहता हूँ कि संभावित आह्लादों का स्मरण आवश्यक है। इन आत्मिक आह्लादों के नाम भौतिक संसार की भाषा में अकथनीय है।

संत आइजक सिरीन ने विधान किया है—'सभी कम्लों में सुख की लालसा ने मानव को उच्चतर को विस्मृत करने हेतु बाध्य किया है।' उनका यह भी कहना है : 'इसे कौन नहीं जानता कि पंछी भी विश्राम की लालसा में जाल में जा फँसती है ? वे सुखी हैं, जो अनंत शक्ति पर आस्था रखते हुए दैनिक श्रम में अनुराग रखते हैं। पावन धर्मग्रंथों के उपरांत हम प्रो०

ए. एस. एडिंगटन की नवीनतम पुस्तक 'तारे तथा परमाणु' का भी स्मरण करें। पार्थिव स्थिति से परे के अन्य नक्षत्रों के सम्बन्ध में बातें करते हुए प्राध्यापक महोदय ने दर्शाया है कि यह कहना अधिक सही होगा—'प्रस्तुत अभिव्यक्ति का कारण उसके पार्थिव होने में है, उसके तारों से सम्बन्धित होने में नहीं। अभी हाल में भी लोगों ने समस्त दूरस्थ लोकों पर पार्थिव स्थितियों को आरोपित करने का प्रयास किया है। आवश्यकता है द्वेष-भाव से मुक्ति की। आवश्यकता है सर्जनात्मक ज्योति-शिखा की। मरुस्थल में उत्सवाग्नि यात्रियों को आकृष्ट करती है। उसी प्रकार स्मरणात्मक आह्वान प्रतिध्वनित होता है तथा समस्त आवरणों को वेधता हुआ वह तत्पर हृदय तक पहुँचता है। मील के पत्थर अनेक हैं। आह्वान (प्रकम) अप्रत्याशित। अथक सतर्कता तथा सुचिंतित ध्यान बन्द द्वार की चाबियाँ हैं। जहाँ विश्वजनीनता एवं अध्ययन की निष्कपटता तथा अभिमंत्रित धर्मतंत्र के प्रति समादर सुनिश्चित है, वहाँ अस्वीकृति के लिए कोई स्थान नहीं है।

इतना सुनिश्चित है कि विज्ञान के जीवन में निष्पक्षता का प्रवेश होता है। बाधाओं से जूझते हुए तथा विभिन्न देशों में तिरस्कार की आँच सहते हुए वे निर्भय आत्माएँ पूर्वनियत संश्लेषण की उपलब्धि के लिए प्रयासरत हैं। शायद निकट भविष्य में ही इन सर्जनात्मक आत्माओं के सम्मेलन संभव हो सकेंगे। अब तो ऐसे केन्द्र निर्मित भी हो रहे हैं, जहाँ इन विचार-बिन्दुओं पर अज्ञानियों की निंदा एवं ईर्ष्या के भय से

मुक्त होकर ये पूर्ण विश्वास के साथ विचार-विनियम कर पाएँगे। तो आएँ, हम संस्कृति के महान उद्यान के बहुरंगे पुष्पों को पूरी सावधानी के साथ एकत्र करें और यह स्मरण रखें कि 'न तो मैं रहस्य को शत्रुओं पर प्रकट करूँगा और और न ही 'जुडाज' का चुंबन ही दूँगा। निंदा-उदासीनता तथा घिनौने अज्ञान से रहित होकर हम सत्य के प्रत्येक बीज का स्वागत करेंगे।

उदात्त आत्मा के दीप्त उल्लास की व्याख्या हम 'उच्च ताप युक्त महोन्माद के रूप में करते हैं। कंठ का केन्द्र-बिन्दु 'विषड़गा' अन्य बहुतों के लिए मात्र एक उन्मत्त गोलक है। संत 'टेरेसा' 'क्लारा' तथा 'एडेगुण्डा' की 'अग्नियाँ; करुणापूर्ण प्रेम के जनकों के प्रबल उत्साह; महान तिब्बती लामाओं के 'तम्मों' तथा आज भी भारत में प्रचलित अग्नि पर चलने की रीति (अग्नि-दिकु—अग्नि-सिंहासन उसी प्रकार भारत में था, जहाँ सहस्र मेरु-शिखरों का उदय होता है) इन सब का बहुतों के लिए अर्थ है, महज तापमान की असामान्य वृद्धि अथवा अतिसंवेदनशीलता का ह्रास । यहां तक कि एक आलू के विघटन के पूर्व उसके भार में अन्तर अथवा उसके कणों के संक्षेपण के समय भार में ह्रास का होना भी हमें अनदेखी की गई कतिपय उर्जाओं पर चिंतन करने को उत्प्रेरित नहीं करता। तथापि, प्रत्येक सही रसायन-शास्त्री यह स्वीकार करेगा कि हर अभिक्रिया के समय कतिपय अनोखी स्थिति उपस्थित होती है—संभवतः इसमें प्रयोगकर्त्ता की ही विशेषताएं उजागर हुई हो।

उदाहरण स्वरूप, सर जगदीशचन्द्र बोस की प्रयोगशाला में एक व्यक्तित्व-विशेष की उपस्थिति ने पौधों की मृत्यु का निवारण किया। चूंकि सर जगदीशचन्द्र बोस एक महान वैज्ञानिक थे, अतः तत्क्षण उनका ध्यान इस घटना पर गया। किंतु, ऐसे लोग नगण्य हैं, जो पौधों के ऊपर पड़ने वाले मानव-प्रकृति के प्रभाव पर ध्यान दे पाते हैं। कुछ तो इतने अधिक उन्नत हैं कि द्वेष भाव, अंधविश्वास, स्वार्थ तथा अहंकार से प्रभावित हुए बिना तथ्य को उसके सही रूप में स्वीकार करते हैं। वस्तुतः 'मिल्लिकन', 'माइकेलसन', 'आइंसटीन', 'रमण' तथा 'मारकोनी' जैसे महान आत्मबलिदानी वैज्ञानिक तो गिने-चुने ही हैं, जिन्होंने बुद्धत्व एवं उन्नयन की मशाल को अथक रूप से प्रज्वलित रखा।

आलोक-धारक गुण (तिजसि) वैसा ही वास्तविक है, जैसा कि एक उच्च स्तरीय चिंतन की उत्तेजना से सृजित होने वाले कांतिमय निस्सरण। इसाई कला-विशेषज्ञों तथा बौद्ध कलाकारों ने इन कांतिमय निस्सरणों को महान बुद्धिमत्ता के साथ अभिव्यक्ति दी है। इन प्रतिमाओं के अध्ययन से आपके समक्ष आलोक का क्रिस्टलीकरण सुस्पष्ट रूप से उद्घाटित हो पाएगा। यही अवसर है इस चिंतन-मूल्य, इस आलोक-मूल्य की वास्तविकता के अध्ययन एवं उसे व्यवहार में लाने का। और, यही अवसर है जब हमें यह देखना है कि परमानन्द की धारण की उद्घोषणा करते समय हम कपोल-कल्पना में न जाकर एक महान वास्तविकता को ही स्वीकारें।

सम्प्रति आविष्कृत हो रही किरणों एवं ऊर्जाओं के मूल्यांकन के प्रतिष्ठापन का समय आ गया है। इस नक्षत्र के वातावरण में अव्यक्त रूप से व्याप्त होने तथा उसे आवर्धित करने वाले रेडियम, एक्स-रे तथा वैसी समस्त शक्तियों के प्रभाव एवं परिणाम के सम्बन्ध में सावधानीपूर्वक आयोजित प्रयोग भावी युगों में होने वाले हैं। निस्संदेह, अब अथक एवं युगावधिक प्रयोगों के लिए प्रयोगशाला की स्थापना सुनिश्चित की जाए। उनमें मानसिक ऊर्जा, आत्मिक एवं वैचारिक दैहिकी, तथा आलोक-धारक अभिकर्ताओं, जीवन-दाताओं एवं जीवन संरक्षकों के गुणों के अध्ययन किए जाएंगे। यह एक विस्तृत सर्जनात्मक क्षेत्र है तथा शोध के क्रम में निस्सीम के समक्ष निर्भयता प्रकट होगी।

अग्नि और आलोक। इस सर्वभेदी एवं सर्वव्यापी तत्व पर मनुजता की समस्त प्रगति केन्द्रित है। यदि सही ढंग से आह्वान किया जाए तो इसे प्राप्त एवं विधिवत प्रयुक्त किया जा सकता है, अन्यथा यह अज्ञानजनित परिणामों को जलाकर भस्म कर देगी। ज्ञान के संश्लेषण के इस अनुसंधान में पुनः एक बार पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण का अन्तर विलुप्त हो जाएगा। तब हम सर्वत्र पाएँगे मात्र वही संबुद्ध हृदय की अतिसूक्ष्म वेदना सिद्धि हेतु-अंतरतम का वही प्रयास, आत्मा का वही उल्लास। और फिर एपोस्ट्ल के स्वर-में-स्वर मिला कर हम कह पाएँगे,—'मौखिक शब्दों की झड़ी लगाने से श्रेयस्कर है हृदय की गहराई से उद्भूत मात्र, पाँच शब्दों का उच्चारण।' तो आएँ,

हम वास्तविक मूल्यों को कपोल-कल्पना ही न रहने दें, बल्कि बेहिचक बिना किसी द्वेष-भाव के उसे आचरण में उतारें। वस्तुतः वास्तविकता को कपोल-कल्पना में रूपांतरित करना संस्कृति के विरुद्ध किए जानेवाले सर्वाधिक दुखद अपराधों में आता है। वैसे अभी भी बहुतेरे लोग हैं, जो सभ्यता तथा संस्कृति में भेद नहीं कर पाते और इस प्रकार वे सांस्कृतिक मूल्यों को सहस्यमय अप्राप्यता का स्वरूप दे डालते हैं। भय तथा पाखंड से प्रारब्ध को कहाँ तक नकारा जा सका है ? किंतु, देर-सबेर व्यक्ति को भय-मुक्त करना ही है भय, उत्तेजना, मिथ्यावादन एवं विश्वासघात में क्षय होनेवाली अपार ऊर्जा को मुक्त करना आवश्यक है। तो आएँ, हम अपने कांतिपूर्ण निस्सरण को एक पटल पर उतारें। इस प्रकार हम आत्मा का सही पारपत्र प्राप्त कर पाएँगे। अग्नि-योग बतलाता है,—'अंधकार लगातार उच्च स्वर में चीत्कार करता है। प्रकाश की चुनौती का सामना करने की क्षमता अंधकार में है ही नहीं।

'संत टेरेसा', 'असीसी के संत 'फ्रांसिस' तथा 'संत जीन डी ला क्रोइक्स' भाव-समाधि में अपने कक्षों की छत तक शून्य में ऊर्ध्वगामी हुए थे। कुछ लोग इसे सर्वथा असंभव मान सकते हैं। और, यदि आज भी ऊर्ध्वगामिता तथा भार-परिवर्तन के साक्ष्य सामने आते हैं, तब फिर उन्हें क्या कहा जाएगा ? परंपरा के अनुरूप दिव्यात्मा 'संत सरगियस' के साथ धर्मोपासना में सहभागी बनी। महाग्नि में हमें अदृश्य सत्य का बोध हुआ। उन्नत चेतना अग्निशिखा द्वारा प्रदीप्त हो उठी। 'असीसी के

संत फ्रांसिस' की प्रार्थना के समय मठ इतना दमक उठता था कि यात्रिगण यह सोचते हुए जग जाते थे,—'यह उषा-काल तो नहीं है ?' जब 'संत क्लारा प्रार्थना करती होती थीं, तब आभा मठ के ऊपर उद्दीप्त हो उठती थी। एक बार तो आलोक इतना उद्दीप्त हो उठा कि पास-पड़ोस के कृषक यह सोचकर दौड़े आए कि वहाँ आग तो नहीं लगी हुई है ?

वैसे तो अनेक कथाएं प्रचलित हैं, किंतु 'पस्कोव के पेकेर्स्की-मठ से सम्बन्धित एक सरल कहानी आती है :

'हमारा मठ एक विरल कोटि का है। इस मठ से बाहर जाते हुए तथा दूर से यह एक अभेद्य अंधकार से आवेष्ठित दीख पड़ता है। किंतु, मठ के ऊपर एक आलोक उद्दीप्त रहता है। कई बार तो मैंने स्वयं इसे देखा है।'

किसी की यह जिज्ञासा हो सकती है कि यह संभवतः मठ की अग्नि का आलोक हो। ऐसी ही जिज्ञासा अन्य अनभिज्ञ लोगों की भी हो सकती है।

'मठ में ये अग्नियाँ आखिर हैं क्या ?''

'दो किरासन-लालटेनें तथा दो तेल दीपक प्रतिमा के समक्ष जलते हैं। प्रकाश के नाम पर तो बस इतना भर ही है।'

'हमारे महानगर में विद्युत का प्रयोग होता है, तथापि अंधकार में उक्त विशेष प्रकार के आलोक की दिशा को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता।'

'नहीं, मठ के ऊपर यह एक विशेष प्रकार का आलोक है।'

वैसे ही हिमालय में अग्नि समझकर लोग उस ओर दौड़ पड़े और ठीक उसी प्रकार विनाशकारी अग्नि-शिखा के स्थान पर आत्मा की दीप्ति के दर्शन किए। उसी तरह हिमालय पर्वत आग्नेय कमल के नीलाभ दलों से मंडित खड़ा था। इसके सदृश ही बाइबिल में अनाशक अग्नि प्रदीप्त हुई थी। अनेक आग्नेय संकेत प्रकट हुए हैं। यथा, विद्युत के विशिष्ट आविर्भाव के रूप में। और, फिर विद्युत है क्या ? इसकी व्याख्या भी नहीं की जा सकी है।'

इटली में, गत भूकम्प के समय, अनेक लोगों ने सारे आकाश को आग की लपटों में जलते हुए देखा। इंगलैंड के आकाश में एक आग्नेय क्रूस को देखा गया। क्या यह अंधविश्वास-भर था ? अथवा, जिसे कुछ लोग देख पाए, तथा कुछ के लिए अनदेखा ही चला गया ?

लोगों की एकाग्रता की परीक्षा करने का प्रयास करें, तो आपको ऐसे लोगों की नगण्यता को देखकर आघात लगेगा, जो अपनी सतर्कता तथा संचलन-शक्ति को व्यवहार में लाना जानते हों। यहाँ तक कि शक्तिमान चुम्बक सदृश्य चिंतन-शक्ति की भी घिनौने रूप से उपेक्षा की जाती है। अतः मुसकाओ; मुसकाओ ! किंतु इतने पर भी तुम सही चिंतन नहीं करते।

यह सच है कि मुक्केबाजी, गोल्फ, क्रिकेट तथा बेसबॉल में चिंतन-शक्ति की अपेक्षा नहीं होती। दौड़ में भी सही चिंतन आवश्यक नहीं है। ऐसे और भी दूसरे धन्धों की खोज की जा सकती है, जिनमें चिंतन की उपेक्षा को न्यायसंगत सिद्ध किया

जा सकता है। किंतु, अंततोगत्वा चिंतन की सर्जनात्मकता की ओर लौटकर आना ही होगा, अतः एकाग्रता के क्षेत्र में किए जाने वाले छोटे प्रयोग भी निष्फल नहीं जाते। वस्तुतः विद्यालयों में एकाग्रता एवं चिंतन के विकास का विशेष पाठ्यक्रम संस्थापित किया जाए। ऐसा व्यक्ति विरल है, जो दो अक्षर एक-साथ लिखवाने में सक्षम हो या दोनों हाथों से लिख सके अथवा दो संवादों को एक-साथ ही उपस्थित करने की दक्षता रखता हो। अक्सर, किसी वस्तु का स्पष्ट बिम्ब स्मरण नहीं रखा जा सकता और यहाँ तक कि एक छोटे अभ्यन्तर का पूर्ण वर्णन भी संभव नहीं है। कुछ लोगों को तो सभी विदेशी एक जैसे दिखते हैं। किन्तु, एक हल्की एकाग्रता भी जीवन में बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है। चिंतन-विज्ञान के अध्ययन के क्रम में हम कुछ ऐसी चीजें पाते हैं, जिन्हें सामान्य जन अद्‌भुत घटना कहते हैं। वस्तुतः वे विधि -विधान की सहंज अभिव्यक्ति हैं। इस प्रकार सच्चा अध्ययन एक बार फिर अनास्थाजन्य हताशा के स्थान पर मनोहर संभावना को प्रतिस्थापित करेगी।

किसी भी स्थिति में हम अग्नि-युग को टाल नहीं सकते। अतः बेहतर है कि इस निधि को महत्त्व प्रदान किया जाए तथा इसकी विशेषज्ञता प्राप्त की जाए। हमारे विवेक पर प्रहार करनेवाले किसी भी वक्तव्य पर आपत्ति करना उचित है। किंतु, अज्ञान से उपजा हुआ संदेह विनाशकारी होगा। तथापि, सम्पूर्ण विश्व आज आश्चर्यजनक रूप से निर्माताओं एवं ध्वंसकों में विभक्त है। आखिर हम जाएँ तो किनके पक्ष में ? हम लोगों

ने बार-बार प्रदीप्त विकिरणों के सम्बन्ध में सुना है, तथापि हम मानव एवं पशु परिमल के सम्बन्ध में किसी भी विचार का उपहास ही करते हैं। यदि फोटोग्राफिक फिल्म भी उसे उतार ले, तो हम उसे फिल्म का दोष कहना ही श्रेयस्कर समझते हैं। इसे सुप्रसिद्ध प्राचीन सिद्धांत रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं है। किसी के अनोखे प्रयोगों का स्मरण आने पर हम उसकी प्रकृति के विशिष्ट गुण को समझने के बजाय उसे एक धूर्त मान बैठते हैं। उसके द्वारा आविष्कृत उपकरण उसकी उपस्थिति में ही कार्य करते थे। दूसरे के हाथों में जाते ही वे काम करना बन्द कर देते थे। तब, फिर एक यंत्र को किसी के हाथ में अधिक और किसी के हाथ में कम थकावट क्यों होती है ? इस तथ्य का प्रत्येक अनुभवी अभियंता प्रत्यक्ष अनुभव करता है। क्यों किसी घोड़े की थकावट उसके सवार पर निर्भर करती है ? क्यों किसी हाथ की विशेषता फूलों के जीवन को छोटा कर देती है ? हम आत्मिक ऊर्जा की बात करते हैं। हमें ज्ञात है कि जैसे प्राचीन 'मिलिसिया क्रूसिकेर इवेन्जेलिक' क्रूस के प्रतीक की चारों ओर एकत्र हो गई थी, उसी प्रकार हम संस्कृति की पवित्र संकल्पना की चारों ओर एकत्र हो जाएँ।

हमलोगों का युग जटिल, किंतु सुन्दर है, जब नवीन संयोजनों में नवीन, बहुरंगे तारे जगमग कर रहे हैं। अनुभवी धर्मोपदेशकों की हमें सलाह है कि 'अंतरतम में विस्मयकारी प्रयास चले। "हम अपने हृदय में प्रभु-नाम का निरंतर जाप

करें, ठीक उसी प्रकार जैसे वर्षा के पूर्व विद्युत अंतरिक्ष में तीव्र गति से घूर्णित होता है। यह उन्हें पूर्ण रूप से विदित है, जिन्हें आध्यात्मिक द्वन्द्व का अनुभव है। यह आंतरिक द्वन्द्व वास्तविक युद्ध की तरह ही लड़ा जाना है।'

'लेकिन जब सत्य के सूर्य द्वारा ऐन्दिक इच्छाएँ बिखर जाएँगी, तब हृदय में प्रदीप्त एवं तारक सदृश आकांक्षाओं का उदय होता है।'

प्राचीन शिक्षा के एक अन्य भाग में कहा गया है,—सम्पूर्ण चेतना के साथ अपने को दृढ़ करनेवाले के शुद्ध, हृदय का मानसिक आकाश में रूपांतरण हो जाता है, जिस आकाश के अपने सूर्य, चन्द्र और तारे अलग होते हैं। ऐसा शुद्ध हृदय ही निगूढ़ विचक्षणता तथा मन की उदात्तता के माध्यम से कल्पनातीत ईश्वर का पात्र बनता है।'

करुणामय धर्मोपासकों ने आगे कहा,—'एक अर्धप्रकाशित कोने में बैठ जाएँ अथवा, अच्छा होगा, प्रार्थना की मुद्रा में मौन खड़े हो जाएँ। शिथिलता को मत आने दें, मन को हृदय में स्थानांतरित करें। अपने ध्यान को नियंत्रण में रखें, अच्छे अथवा बुरे विचारों को अपने मन में न आने दें; शांत धैर्य बनाए रहें तथा यथोचित संयम बनाए रक्खें।'

'इस नियत कार्य में सहायतार्थ पवित्र धर्मोपासकों ने कतिपय उपाय बताए, जिन्हें कला तथा कलाओं की कला को आचरण में उतारनेवाला विशेषक कहा । श्वास के माध्यम से हृदय में उतरने की यह प्राकृतिक कला चिंतन की उदारता में

बहुत सहायक होती है। इस विशिष्ट प्राणायाम के सम्बन्ध में अपनी सलाह देते हुए पवित्र धर्मोपासक ने आगे कहा,—'फेफड़े के द्वारा श्वास ग्रहण करना, वायु को हृदय तक पहुँचाता है। इस प्रकार बैठ जाएँ तथा मन को एकाग्र करते हुए उसे इस दिशा में ले जाएँ; इसे श्वास के द्वारा श्वास ली गई वायु के साथ हृदय में प्रविष्ट कराएँ। इसे वहाँ रोके रक्खे; इसके बाहर निकलने की प्रवृत्ति के बावजूद भी। इसे वहां शिथिल न रहने दें, बल्कि इसे पावन शब्दों से सिक्त करें। इस आंतरिक एकाग्रता का अभ्यस्त हो जाने का प्रयास करें और देखें कि कहीं मन वहाँ से बहुत जल्द हट तो नहीं जाता है। चूंकि प्रारंभ में यह विषाद के प्रभाव में रहेगा और उसके उपरांत उसे वहाँ स्थिर होना सुखद और आनन्ददायक लगेगा तथा वहाँ यह स्वयं स्थिर रहना चाहेगा। अगर आप मेरी दर्शाई विधि से हृदय में प्रवृष्ट होने में सफल हो जाते हैं, तो इस अभ्यास को हमेशा के लिए अपने आचरण में उतार लें। यह आपको वैसी शिक्षा से मंडित करेगा, जिसकी आपने कभी परिकल्पना भी न की होगी।'

इस प्रकार एक अनुभवी गुरु की प्राप्ति आवश्यक है। 'संत ग्रेगरी सिनाइट' ने कहा है,—'एक सक्रिय तथा निष्कपट भाव से की गई प्रार्थना इस विधि से संभव हो पाती है : एक आधे फीट ऊँचाई की नीची कुर्सी पर बैठें; मन को मस्तिष्क से हृदय की ओर स्थानांतरित करें तथा इसे वहाँ स्थिर करें। वहीं से निष्कपट प्रबुद्धता का आह्वान करें,—'हे प्रभु जेसस

क्रिस्ट, हमें अपनी करुणा का प्रसाद दो।'

यह जान लें कि शरीर की ये सारी स्थितियाँ निर्धारित हैं तथा शुद्ध एवं एकाग्र प्रार्थना के हृदय में सुस्थिर होने तक आवश्यक है। और, जब प्रभु की कृपा से आपको इसकी प्राप्ति हो जाए, तब सभी विशिष्ट प्रयासों को छोड़ कर भी शुद्ध एवं एकाग्र हृदय-अनुभूत प्रार्थना में प्रभु से आपका निःशब्द मिलन संभव होगा। तब फिर किसी प्रकार की विशेष तैयारी की आवश्यकता न होगी। इसके अतिरिक्त आप यह भी न भूलें कि जब कभी शुद्ध स्वैच्छिक प्रार्थना के लिए प्रेरित हों, तो उसे सामान्य प्रार्थना-नियमों के बन्धनों से विनष्ट न करें। इन नियमों का परित्याग करें और जहां तक आपकी—अंतर्शक्ति जा सके आप प्रभु का ध्यान करते रहें। और, तब वह आध्यात्मिक संप्राप्ति के लिए हृदय को संबुद्ध करेगा।

'यहाँ तक कि गहरी निद्रा में भी बिना किसी प्रयास के हृदय से सुगन्ध उच्छ्वसित होगी। निद्रा में यद्यपि अंतः स्वर मौन होगा, किंतु अंतर में पवित्र प्रार्थना निरंतर चलती रहेगी। चूँकि मात्र यही पवित्र करार, जो अन्य किसी भी बिम्ब से मुक्त है, हृदय में निरंतर घूर्णित होता रहता है, शत्रुओं को पीछे हटने को बाध्य कर सकती है तथा जैसे अग्नि तिनके को जलाती है, वैसे ही उन्हें विनष्ट एवं स्वाहा कर देती है।

गिरजाघर के पवित्र धर्मोपासकों के वचन को अनन्त रूप से उद्धृत किया जा सकता है। संन्यासियों के आश्रमों के नियम भी गिनाए जा सकते हैं। लोग यह अनुभव करते हैं कि ये

नियम जीवन के लिए निर्मित हुए हैं और इन्हें निष्ठापूर्वक आचरण में लाना है। पुनः एक अनुभवपूत स्वर बतलाता है,—'जब आध्यात्मिक उपहारों की प्राप्ति होती है, तब अक्षर परमानन्द की स्थिति में व्यक्ति उद्दीप्त हो उठता है और आध्यात्मिक निधि के ध्यान में अल्ल हो जाता है। ऐसी सांसारिक माया से मुक्त मनुष्य सदा-सदा के लिए मृत्यु से परे होकर अमरत्व प्राप्त कर लेता है। दैवी सौंदर्य की आभा अनिर्वचनीय है। यह वर्णनातीत एवं श्रवणातीत है। अगर आप इसकी तुलना उषा की लालिमा, चन्द्रमा की दीप्ति तथा सूर्य के आलोक से भी करें, तो ये सब मिलकर दैवी आभा की, समता नहीं कर सकते। सच्चे-आलोक के समक्ष ये सभी अकिंचन हैं, बल्कि पवित्रतम आलोक की तुलना में ये गहनतम रात्रि अथवा घोरतम अंधकार ही हैं। इस प्रकार 'हृदय के आध्यात्मिक पुरुष' का अनुभव करनेवाला व्यक्ति ही कह सकता है,—'एक प्रकाश जो अंधकार में भी प्रदीप्त रहता है तथा जिसे अंधकार भी बुझाने में असमर्थ है।'

जब मिस्र-निवासी 'मकारी' ने नीचे दिए शब्द लिखे, तब उसने अमूर्त प्रतीकों का वर्णन नहीं किया, बल्कि दिव्य उपलब्धि की चर्चा की : 'जो आलोक-पुत्र हैं तथा जो परमात्मा की उपासना के पुत्र हैं, वे दैवी प्रबुद्धता से अनुप्रेरित हैं, अतः वे संसारी लोगों से कुछ भी नहीं सीखेंगे। क्योंकि, परमानन्द उनके हृदय में आत्मिक विधान को अंकित कर देता है। उन पर स्याही से अंकित लेखन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, किंतु

हृदय-पटल पर ईश्वर-प्रदत्त परमानन्द द्वारा आत्मिक विधान तथा स्वर्गिक रहस्य-अंकित हो जाते हैं। वस्तुतः हृदय ही शरीर के अंगों का नियमन करता है। और, जब परमानन्द हृदय की उपत्यका में प्रविष्ट हो जाता है, तब यह शरीर के समस्त अंगों पर शासन करता है तथा सारे चिंतन को नियंत्रित करता है।

एक प्राचीन मिस्री पटेरे का कथन है—'हृदय की क्रिया का ज्ञान ही चिकित्सक का प्रारंभिक ज्ञान होता है।'

'जिसे आध्यात्मिक हृदय का ज्ञान है, वही स्थूल हृदय की सूक्ष्म वेदना को समझने में समर्थ है। इसके सम्बन्ध में पवित्र धर्मोपासक अत्यन्त ही प्रेरेक रूप में कहते रहे हैं। जिन्हें इस सूक्ष्म वेदना का ज्ञान होता है, वही प्रेमाग्नि को पहचान पाते हैं। यह प्रेम आहों से पूर्ण नहीं होता, बल्कि वह कर्म एवं संबोधि का सच्चा प्रेम होता है। प्राचीन काल से इस प्रेम को देव-पुरुष का प्रेम कहा जाता रहा है। यह प्रेम मानवीय संवेदनाओं को परिशुद्ध एवं उन्नत करता है। अग्नि-योग की मान्यता है,—'ज्ञान का मनीषी प्रेम का स्वामी नहीं हो सकता।'

अंतर की अग्निशिखा का हृदय-सूक्ष्म वेदना का ज्ञान जीवन की उच्चतम परीक्षा के अनुभव से मंडित व्यक्ति को ही होता है। इसका ज्ञान उन्हें भी होता है, जिनके लिए प्रबुद्ध श्रम दैनिक प्रार्थना बन गया है और प्रार्थना अविराम अंतर्गीत एवं आलोक-गीत में रूपांतरित हो गई है। कुछ लोग पूछ सकते हैं कि गीत क्या है तथा इसकी सम्प्राप्ति इतनी महत्त्वपूर्ण क्यों है ? इसका अर्थ है कि ऐसी जिज्ञासा करने वाला हृदय की सूक्ष्म वेदना से अपरिचित है तथा ब्रह्माण्ड में व्याप्त संगीत से अनभिज्ञ भी। उसने प्रकृति में गुंजित स्रोत्र को भी नहीं सुना

है। बिना आत्मप्रयास के किसी को संबोधि की चिंगारी भी दृष्टिगत नहीं हो सकती, जिसके प्रभाव से ही ब्रह्म एवं प्रेम का सामिप्य संभव होता है। आत्मा का केन्द्र जीव-अवयवों के केन्द्र से जुड़ा हुआ है। 'युगों से ज्ञात इस एकत्व की व्याख्या न तो वैज्ञानिक रीति से और न दार्शनिक दृष्टिकोण से की जा सकी है, किंतु, फिर भी यह प्रत्यक्ष है।' अनुभव का यज्ञपात्र ! इस प्रकार हम पुनः सृष्टि के समीप चिंतन के माध्यम से आते हैं, जो रहस्यपूर्ण किंतु निर्विकार है। 'शब्द पदार्थ में रूपांतरित हो गए।' इस प्रकार शब्द ने भौतिक रूप ग्रहण कर लिया। यह रहस्य प्रत्येक मनुष्य तथा प्रत्येक अवतरित आत्मा में व्यक्त है। 'ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य के हृदय में शाश्वतता को स्पंदित किया।' समस्त अवतारों में आलोक-स्थल अमर एवं शाश्वत है। इससे आलोक का बोध होगा, इसलिए कि यह स्वयं आलोक का उद्गम ही है। सूक्ष्म वेदना अभिव्यक्ति है—सूक्ष्म ऊर्जा की और दीप्ति ऐसी ऊर्जाओं की क्रिया की मूल विशेषताएँ। जब इस आलोक में तीव्रता आती है, तब यह हमारी आँखों के समक्ष भी प्रत्यक्ष होती है। यह क्षण हमेशा-हमेशा के लिए चिर-प्रतीक्षित एवं असंभावित रह जाता है। मशाल को प्रज्वलित रखने का आदेश होता है, किंतु महान दूत के आगमन का क्षण अनिर्वचनीय होता है। उसी प्रकार अंतर्वेदना भी अनिर्वचनीय है तथा आश्रम में प्राप्त संबोधि-ज्ञान का आनन्द भी। इसके साथ-साथ हमें भग्वद्गीता, अग्नियोग एवं कब्बला के आदेशों तथा बाइबिल की भविष्यवाणियाँ एवं ज़ोरोस्टर की अग्नि का भी स्मरण रखना चाहिए।

आलू का सूर्य से सादृश्य उसी अव्यक्त किंतु ज्योतिर्मय अवधारणा के अंतर्गत आता है। जब अनुभवपूत लोग आपस

में मिलते हैं। तो उन्हें किसी शब्द-भंडार की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि मौन में भी वे हृदय की भाषा को समझ लेंगे।

अतएव, अनुभव प्राप्त करें तथा इसकी घोषणा करें, क्योंकि न तो आपको अपनी सर्वोत्तम घड़ी ज्ञात है और न ही आपको यह पता है कि संचय-पात्र के ऊपर ज्योति-शिखा कब उद्दीप्त होगी। मात्र उच्च गुण-सम्पन्न चिंतन ही आपका मार्गदर्शन कर सकेगा तथा अतोषणीय तीव्रता प्रज्ञा-स्वरूपा 'सोफिया' के आलोक-पंख होगी। यह घूर्णित होने को विहित है, किंतु विनष्ट होने को नहीं। सुकरात द्वारा सुनी गई हृदय-केन्द्र की प्रतिध्वनि उत्तम के लय के साथ समस्वर हो जाती है। स्पीनोजा के उच्च तत्त्व का ओजोनीकरण भी उन्हीं आलोक-तरंगों द्वारा होता है हृदय का आभामय केन्द्र सर्व-प्रदीपक ज्योति-शिखा के सान्निध्य में दमक उठता है, जिसे 'ग्रेल' की अनुश्रुतियों का विस्मयकारी प्रस्तर भी कहा जाता हे।

अग्नि-योग की मान्यता है : 'ब्रह्माण्ड के मूल में हृदय की खोज करें। 'यज्ञपात्र के चक्र के द्वारा हृदय की सर्जनात्मकता विकृत बना दी जाती है।' महत्तम शक्ति तो हृदय-चुम्बक में केन्द्रित है।' 'हृदय की स्वस्ति के अभाव में शब्द अर्थहीन है।' 'सूक्ष्म तन्यता हृदय का मोती है।' 'अग्निशिखा-स्वरूप अर्हत अपने हृदय में समस्त अग्नियों का वहन करता है।'

ओरिजेन का दृढ़ कथन है : 'हृदय की आँखों से हम सृष्टि-प्रवाह को देख सकते हैं।'

धर्मोपासक पॉल ने निर्भयता के साथ घोषणा की है,—'निर्मल के समक्ष सभी निर्मल होते हैं।' वह हृदय की निर्मलता एवं क्रियाकलाप को जानते थे कि वह उत्तम को ही पहचानता है तथा चुम्बक के सदृश अपनी चारों ओर मात्र उत्तम को ही

आकृष्ट करता है। हृदय तथा चुम्बक में सादृश्य की चर्चा अक्सर की जाती है, यद्यपि वैज्ञानिक रूप से इस मान्यता को अब तक स्वीकृति नहीं मिल पाई है । तथापि, प्रज्ञा एवं ज्ञान-निधि की संप्राप्ति हृदय बोध, प्रेम-पात्र तथा आत्म-विसर्जन क्रिया के माध्यम से ही संभव है। धर्मोपासक का कथन है,—'जहाँ आपकी निधि है, वहीं आपका हृदय है।' हृदय की दीप्ति सागर की प्रतिदीप्ति के सदृश है, जो अपनी गतिशीलता में असंख्य एवं प्रत्यक्ष प्रदीप्त रचनाओं को स्वरूप देती है। उसी प्रकार सर्जनात्मक प्रेम हृदय की लौ को प्रज्वलित कर देता है। महान मनीषियों का विचार है कि 'आलोक का आविर्भाव सुनिश्चित है।'

अंतर स्थित मनुष्य मात्र उत्तम की कामना करता है और हृदय की उद्दीप्रता के क्षण में वह निस्सन्देह उत्तम की स्थिति को जानता है। और हृदय की दीप्ति से उत्तम का ही उदय होता है और यह प्रकट होता आलोक अज्ञान की समस्त अपवृद्धि को शमित कर देता है, क्योंकि पाप एवं अज्ञान अंधकार के भ्राता है। आत्मा की पवित्रता में जीना उद्दीप्त होना है, भला कार्य करना है और निरन्तर सिद्धि की ओर बढ़ना है। मात्र दैहिक जीवन जीने का अर्थ है अंधकारोन्मुख होना, निन्दित करना, अज्ञानी होना तथा अपने मार्ग को लम्बा बनाना। लेकिन इसे कतई अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए कि अपनी प्रगति को बाधित कर हम अपने सर्वाधिक निकट के लोगों की प्रगति में बाधा उपस्थित करते हैं। अतः आडंबर

अथवा अहंभाव, स्वार्थ अथवा आत्मदया, मिथ्याहंकार अथवा अज्ञान-इनमें से प्रत्येक अंधकार का दुर्ग है, अपने निकटवर्ती लोगों के हित में हम आलोक एवं उत्तम के तरंग लय में विघ्न उत्पन्न न करें।

फूलों के सम्बन्ध में किए गए अवलोकन उपयोगी सिद्ध हुए हैं। उसी प्रकार आलोक-वाटिका पर अहर्निश ध्यान देने की आवश्यकता है। शुद्ध चिंतन-धाराएँ उसकी श्रेष्ट देख भाल है। आलोक जितना अधिक तीव्र होगा, अंधकार उतना ही क्षीण। यहाँ तक कि देवदूत का प्रदीप्त हृदय अंधकार की स्वतंत्रता का चयन करेगा, न कि प्रार्थना एवं परमानन्द का। अतः अब बिना विलम्ब किए आलोक वाटिका की देख-भाल की आवश्यकता है। अन्यथा व्याघ्र लिली को चित्तीदार जिह्वा घोषणा की लिली को निगल जाएगी तथा विश्वाघातिनी कष्टालिका आभामय शिखर के फ्रेसियस को पराजित कर देगी। व्यक्ति को उद्दीप्त होना ही है। उसे हृदय के आलोक का उत्पादन एवं शक्ति संवर्धन करना है।

इस तथ्य को स्मरण रखना आवश्यक है कि आलोक की सहप्रदीप्ति एवं सह-प्रतिध्वनि पारस्परिक रूप से प्रशक्त होती हैं। परोपकार-भावना से मंडित चिंतन की शक्ति अपरिमेय होती है। हर व्यक्ति आलोक रूप है, किंतु हम उसे एक रिक्त पात्र से बुझा सकते हैं। कहा गया है,—'गुलाब के एक दल के झड़ जाने से सुदूर ब्रह्माण्ड प्रकंपित हो जाते है। उसी प्रकार पक्षी के पंख से एक पर का गिरना सुदूर नक्षत्रों में घोर गर्जन उत्पन्न कर देता है। क्या ही व्यापक एवं सुन्दर दायित्व का दिग्दर्शन ! हम फूहर मानस से उत्पन्न गर्जन को पृथ्वी की दिशा में न मोड़ें।

इस उत्प्रेरक दायित्व से अपने समस्त परिवेश के सच्चे एवं भ्रमरहित अध्ययन का उद्दीप्त प्रयास जन्म लेता है। यहाँ तक कि एक कुशल कलामर्मज्ञ के लिए भी दैनिक अभ्यास आवश्यक है। इसमें बारम्बारता अपेक्षित है।' अगर आप श्रांत हैं, तो पुनः प्रारंभ करें। अगर आप निढाल हो गए हैं, तो पुनः प्रारंभ करें। प्रेम का कवच रूप में आह्वान करें। 'प्रेम की उत्तेजना हृदय की सूक्ष्म वेदना के सदृश ही वास्तविक होती है। चिंतन की दीप्ति न केवल दृश्य होती है, बल्कि उसकी आकृति फिल्म में भी रूपायित हो पाती है। बिना अंधविश्वास के, निर्भय होकर तथा निःस्वार्थ भाव से तत्क्षण इसका अध्ययन किया जाना आवश्यक है। साक्ष्य भौतिक शरीर से सम्बद्ध है, किंतु आत्मा से नहीं। सत्य का वास्तविक अस्तित्व तो है, किंतु साक्ष्य-विज्ञान-सम्मत नहीं।

ऊर्जा का महान रूपान्तरकर्ता को ज्ञात है कि संत्रास का अट्टहास तथा उल्लास का कम्पन्न कहाँ स्थित है। संत्रास तथा दीप्ति के उत्कर्ष स्थल में अन्तर करने में आत्मा ही सक्षम है। तो फिर, क्यों, अपने को तपाया और कार्बनीकृत किया जाए, जब अमर्त्य रूप हो प्रदीप्त होने का प्रारब्ध है ? 'ईश्वर वह अग्नि है जो हृदय में उल्लास गरमाहट उत्पन्न करता है।'—यह संत सेरफिम का कथन है।

पालमिस्ट सम्राट ने गाया है,—'वह हमारे हृदय की गहराइयों से परिचित है।' जब हम सुन्दरतम तथा हृदय की गहराइयों के सम्बन्ध में बातें करते हैं, तब सबसे प्रथम हमारे मानस में सुन्दर एवं सर्जनात्मक चिंतन ही होता है। अत्यन्त कोमल पुष्पों की तरह उसका भी परिपोषण किया ही जाए। निरंतर रूप से परमानन्द की तरंगित धारा से उनका सुनिश्चित

सिंचन करें हमें स्पष्ट एवं निःस्वार्थ चिंतन-प्रक्रिया का सुनिश्चित जान नित्य ही प्राप्त करना चाहिए। चिंतन के सर्वोच्च पौधे, आकांक्षाओं का निश्चित पोषण करना चाहिए। हम अपने में साहस का संचार करें। हम निर्भय होकर उच्च आकांक्षाओं की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हों। शिखरों पर खड़े होकर हम सुदूर क्षेत्रों को देखने में समर्थ हो सकते हैं। शिखरों से ही ईश्वरादेश की तालिका प्राप्त होती है। शिखरों से ही हमें उदात्त नायकों एवं सिद्धि की उपलब्धि होती है। हमारी महत् आकांक्षाएं प्रदीप्त होती हैं। प्रदीप्त आकांक्षाएं परमानन्द का प्रवेशद्वार हैं।

अग्नि और चिंतन।

सर्वशक्तिमान प्रज्ञा, 'सोफिया', के पंख आग्नेय है।

'आग्नेय ब्रह्माण्ड' नामक पुस्तक का समारंभ निम्नांकित शब्दों से होता है,—'सर्वाधिक सर्वव्यापी सर्वाधिक सर्जनात्मक तथा सर्वाधिक प्राणधारक अग्नि-तत्त्व को सबसे कम ध्यान में लाया जाता है तथा महत्त्व दिया जाता है.....। मानव चेतना में अनेक तुच्छ और महत्त्वहीन विचार भरे रहते हैं। किंतु सर्वाधिक विस्मयकारी को हम टाल देते हैं। लोग बाजार में एक पैसे के लिए तो मोल-भाव करते हैं, किन्तु, वास्तविक निधि के लिए हाथ फैलाने में हिचकिचाते हैं। हृदय के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा गया है, वह विशेष बल के साथ आग्नेय ब्रह्माण्ड पर भी लागू है। इन्द्रधनुष की सतरंगी आभा आत्मा के संघर्ष को ही समर्थित करती है। अग्निधर्म को व्यवहार में लाने की बहुलता सृष्टि के विस्मयकारी अस्तित्व में अभिव्यक्त है। भौतिक दृष्टि में सक्रिय सामान्य रूप से निर्मित आलोक से हृदय की अत्यन्त जटिल अग्नि तक-हर वस्तु हमें आग्नेय ब्रह्माण्ड तक ले जाती है।

आलोक

हम किस तरह पा सकेंगे
तुम्हारे मुख-कमल के दर्शन
हर चीज़ का मर्म समझने में समर्थ यह मुख
अथाह है अथाह भावनाओं और विवेक से अधिक
आदृश्य, अश्रव्य और अनुभवातीत है वह

हृदय, विवेक और श्रम—सबका
आह्वान करता हूं आज के दिन।
जिसका न स्वाद है, न रूप, न आवाज़
जिसका अंत है, न आरंभ ?

अंधकार में जब सब कुछ रुक जाता है
रुक जाती है मरुभूमि की प्यास
और समुद्रों का नमक।

मैं तुम्हारे चमकने की प्रतीक्षा करूँगा
तुम्हारे मुख-कमल के सम्मुख
बंद कर देते हैं चमकना
सूर्य और चंद्रमा,
तारे ज्योति और विद्युत
उत्तरी ध्रुव की लालिमा

और इंद्रधनुष के सब रंग।
चमक रहा है तुम्हारा मुख-कमल
हर चीज़ चमक रही है उसके आलोक से।
तुम्हारी आभा का एक कण
चमक रहा है अंधकार में।
और मेरी बंद आँखों से
चमक रहा है तुम्हारा अद्‌भुत
आलोक

1918

□□

रेरिख केवल उत्कृष्ट और मौलिक चित्रकार ह नहीं बल्कि अनुभवी पुरातत्ववेत्ता, कवि, लेखक और सामाजिक कार्यकर्ता भी रहे हैं। अपने समय की सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं, संस्कृति के अतीत और वर्तमान, विभिन्न कला और साहित्य आंदोलनों के प्रति वह अत्यंत सचेत और संवेदनशील रहे। संस्कृति की मनुष्य को मनुष्य बनाये रखने की क्षमता और सामर्थ्य पर रेरिख को जीवन पर्यंत अटूट विश्वास रहा और संभवतः इसी विश्वास ने ही उन्हें दूसरे क्षेत्रों की संस्कृति का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। यूरोप केंद्रित चिंतन पद्धतियों से मुक्त निकोलाई रेरिख गैर यूरोपीय देशों और जातियों की संस्कृति में उच्च मानवीय मूल्यों का दर्शन पा सकने में सफल रहे। इसीलिए रेरिख उच्चतम अर्थों में सच्चे संस्कृति कर्मी के रूप में विश्व-भर में आदर पा सके।

रेरिख मुख्यतः चित्रकार के रूप में जाने जाते हैं। रेरिख की चित्रकला की पृष्ठभूमि की विशिष्टता उनके लेखन में स्पष्टता से अंकित हुई है। [illegible] में रेरिख का चिंतन अत्यंत सारगर्भित भाषा [illegible] इस छोटी-सी कृति में यह अनुमान ल[illegible] रेरिख का अध्ययन क्षेत्र कितना व्याप[illegible] था। विश्व के सब धर्मों और चिंतनप[illegible] ग्रहण करने में उतने ही तत्पर थे जितने कि चिंतनविरोधी रूढ़ियों को अस्वीकार करने में।

Library IIAS, Shimla
H 291.212 R 628 A
G2047